द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ४

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

वेढ्ढओ (वेष्टक) छंद

सावत्थिपुव्वपत्थिवं च, वरहत्थिमत्थयपसत्थ विच्छिन्नसंथियं;
थिरसरिच्छवच्छं मयगल - लीलायमाणवरगंधहत्थिपत्थाणपत्थियं संथवारिहं.
हत्थिहत्थबाहुं धंत कणगरुअग, निरुवहय पिंजर पवरलक्खणोवचिय सोमचारुरूवं;
सुईसुह मणाभिराम परम, रमणिज्जवरदेवदुंदुहि निनायमहुरयर सुहगिरं वेढ्ढओ.....९

रासालुद्धओ (रासालुब्धक) छंद

अजिअं जिआरिगण, जिअसव्वभयं भवोहरिउं;
पणमामि अहं पयओ, पावं पसमेउ मे भयवं रासालुद्धओ.....१०

-: शब्दार्थ :-

सावत्थि - श्रावस्ती नगरी में
पुव्वपत्थिवं - पूर्व राजा
वरहत्थि - श्रेष्ठ हाथी के
मत्थय - मस्तक
पसत्थ - श्रेष्ठ
विच्छिन्न - विस्तार वाला
संथियं - जिनका शुभ संस्थान है
थिर - स्थिर
सरिच्छ - श्रीवत्स के चिन्हवाली
वच्छं - छाती वाले
मयगल - मदोन्मत्त
लीलायमाण - क्रीडा करते
वरगंधहत्थि - श्रेष्ठ गंधहस्ति
पत्थाण - प्रस्थान
पत्थियं - जैसी चाल वाले
संथवारिहं - स्तवन करने योग्य
हत्थिहत्थबाहुं - सूंढ जैसी बांहोवाले
धंत - तपाया
कणग - कनक / सोने के
रुअग - पात्र
निरुवहय - निष्कलंक
पिंजर - पीत वर्णवाले
पवर - श्रेष्ठ
लक्खण - लक्षणो से
उवचिय - युक्त / व्याप्त
सोमचारुरुवं - सौम्याकार सुंदररुप वाले
सुइसुह - कान को सुखाकारी
मणाभिराम - मन को आल्हादक
परम - अत्यंत
रमणिज्ज - रमणीय
वरदेवदुंदुहि - श्रेष्ठ दुंदुभी के
निनाय - शब्दो से
महुरयर - अति मधुर
सुह - कल्याणकारी / सुखाकारी
गिरं - वाणीवाले
अजिअं - श्री अजितनाथ भगवान को
जिआरिगण - शत्रुओ के गण को जीतने वाले
जिअसव्वभयं - सर्व भय को जीतने वाले
भवोहरिऊ - संसार प्रवाह के शत्रुरुप
पणमामि - प्रणाम करता हूँ
अहं - मैं
पथओ - तत्पर
पावं - पाप को
पसमेउ - शांत करो / शमावो
मे - मेरे
भयवं - हे भगवान

गाथार्थ : श्रावस्ती नगरी के पूर्व राजा, उत्तम हस्ति के मस्तक जैसे, श्रेष्ठ संस्थानवाले, स्थिर श्रीवत्स के चिन्हवाली छातीवाले, मदोन्मत क्रीडा करते उत्तम गंधहस्ति जैसे गमन (चाल) वाले, स्तवनकरने योग्य, हाथी की सूंढ जैसी बाँहोवाले, तपाये सुवर्ण पात्र की तरह निष्कलंक पीले रंग वाले, उत्तम लक्षणो से युक्त, सौम्याकार सुंदर रुप वाले, कान को सुखकारी, मन को आनंद दायक तथा रमणीक ऐसे देवदुंदुभि के शब्दों से भी अतिशय मधुर कल्याणकारी वाणी बोलने वाले.....९

शत्रुओं के गण को जीतनेवाले, सभी भय को जीतनेवाले और इस संसार प्रवाह के शत्रुरुप श्री अजितनाथ स्वामी को मैं तत्पर होकर प्रणाम करता हूँ। हे भगवान ! आप मेरे पापों का शमन करो, शांत करो १०

वेढ्ढओ (वेष्टक) छंद

कुरु जणवय हत्थिणाउर नरीसरो,
पढमं तओ महाचक्कवट्टिभोअे, महप्पभावो,
जो बावत्तरि पुरवर सहस्स वरनगर निगम,
जणवय वई, बत्तीसा रायवर सहस्साणुयायमग्गो,
चउदस वररयण नव महानिहि,
चउसट्ठि सहस्सपवर जुवइण सुंदरवई,
चुलसी हयगय रह सयसहस्स सामी,
छण्णवई गामकोडिसामी आसिज्जो भारहम्मि भयवं, वेढ्ढओ.....११

रासानंदियं (रासानंदितं) छंद

तं संतिं संतिकरं, संतिण्णं सव्वभया;
संतिं थुणामि जिणं, संतिं विहेउ में. रासानंदियं युग्मम् १२

-: शब्दार्थ :-

कुरुजण - कुरु देश
हत्थिणाउर - हस्तिनापुर नगर
नरीसरो - नरेश / राजा
पढमं - प्रथम
तओ - तत्पश्चात
महाचक्कवट्टि - महाचक्रवर्ती के योग्य
भोअे - भोग योग्य राज्य के लिये
महप्पभावो - महान प्रभाववाले
जो - जो
बावत्तरि - बहोत्तर
पुरवरसहस्स - हजार श्रेष्ठपुर
वर-नगर - श्रेष्ठ नगर
निगम - समृद्ध शाली दुकान वाले निगम
जणवय - देश के
वई - अधिपति
रायवर - मुकुटबद्ध राजा
सहस्स - हजार
अणुयायमग्गो - जिनके पीछे चलने वाले हैं
चउदस - चौदह
चुलसी - चौर्यासी
हयगय - घोडे हाथी
रह - रथ
सय सहस्स - सौ हजार / लाख
सामी - स्वामी
छन्नवइ - छियानवे
गाम कोडी - करोड गाँव के
सामी - स्वामी
आसिज्जो - हुए थे
भारहम्मि - भरत क्षेत्र में
भयवं - भगवान श्री शांतीनाथ
तं संति - वे शांतिरुप
संतिकर - शांति करने वाले
संतिणं - तैर गये हैं
सव्वभया - सर्व भय
संतिं - श्री शांतिनाथ को
थुणामि - स्तुति करता हूँ
जिणं - जिनेश्वर को
संतिं - शांति

वररयण - श्रेष्ठ रत्न
नव महानिहि - नौ महा निधान
चउसट्ठि सहस्स - चौसठ हजार
पवर जुवइण - श्रेष्ठ युवतीओके
सुंदरवई - सुंदर पति
विहेहु - करने के लिये
में - मेरी

गाथार्थ - कुरुदेश में स्थित हस्तिनापुर के प्रथम राजा, तत्पश्चात जो महाचक्रवर्ती और महा प्रभाविक हुए, जो बहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर / नगर तथा बडी समृद्धिवान दुकान वाले श्रेष्ठनगर और देशो के पति, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा जिनके पीछे चलने वाले हैं, जो श्रेष्ठ चौदह रत्नो, नौ निधान और चौसठ हजार सुन्दर युवतीओ के पति हुए हैं, चौर्यासी लाख घोडे, चौर्यासी लाख हाथी तथा चौर्यासी लाख रथ के स्वामी हुए हैं, जो छियानवे करोड गांव के स्वामी हुए है, ऐसे भगवान शांतिनाथ इस भरत खंड में हुए थे, उपद्रवों का उपशम और शांति करने वाले, सर्व भय को तैर गये हैं , ऐसे शांतिनाथ भगवान की स्तुति मैं मेरी शांति करने के लिये करता हूँ.....११-१२

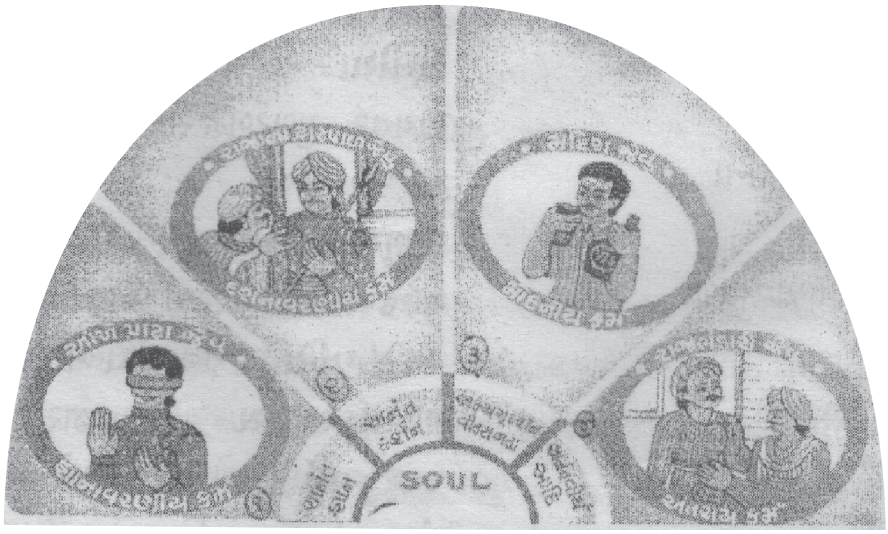

श्रीगणधरवाद

३) तीसरे गणधर श्री वायुभूति गौतम

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

श्री इन्द्रभूति एवं अग्निभूति ऐसे दोनों बडे भाइयो से छोटे तीसरे भाई श्रीवायुभूति थे । वसुभूति पिता व पृथ्वीमाता के वे तीसरे नंबर के पुत्र थे । इंद्रभूति से वो ८ वर्ष छोटे तथा अग्निभूति से वे ४ वर्ष छोटे थे । पृथ्वीमाता ने उन्हैं उत्तम ऐसे स्वाति नक्षत्र में जन्म दिया था, मगधदेश की गोब्बर गांव की धरती उनकी जन्मभूमि थी ।

ब्राम्हण जाति के विप्रवर्य वायुभूति ने भी अपने कुलाचार अनुसार वेद-वेदान्तो का अभ्यास किया, श्रुति-स्मृति, वेद-पुराण, निघंटु - छंद, न्याय-व्याकरण आदि विद्याओ में वे पारंगत हुए, अनेको को अध्यापन कराते हुए उनका ५०० शिष्यों का परिवार हुआ था । अध्ययन - अद्यापन के व्यवसाय से जुडे हुए ऐसे प्रसिद्ध विद्वान विप्रवर्य वायुभूति ने भी अनेक शास्त्रार्थ सभाओ में भाग लिया था और अनेको को वाद-चर्चा में हराकर वाद-विजेता की उपाधि पायी थी ।

परंतु इतने धुरंधर विद्वान ऐसे वायुभूति को एक वस्तु गले के नीचे नहीं उतर रही थी कि जीव यही शरीर है या शरीर यही जीव है । अपने बडे भाई की तरह वे सर्वथा जीव का अस्तित्व नहीं मानते ऐसा नहीं है, जीव का अस्तित्व तो मानते है, परंतु जीव-शरीर को अलग-अलग नहीं मानते । जीव खाता नहीं इसलीये उन्होंने शरीर को ही जीव एवं जीव को ही शरीर मान लिया था । वेद पदो का अर्थ बराबर न करने से उनके मन में यह शंका घर कर गयी थी ।

वायुभूति ने, इंद्रभूति तथा अग्निभूति ने अपने परिवार के साथ संयम ग्रहण किया ऐसा सुनकर, जिनके शिष्य मेरे बडे भाई इंद्रभूति व अग्निभूति हुए है, वो मुझे भी पुज्य है, मैं भी उनके पास जाकर मेरी शंका का समाधान कर लुं ऐसा विचार किया फिर वे अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यों के साथ प्रभु के पास आये तब वीरप्रभु ने कहा कि, **हे वायुभूति ! यह शरीर ही आत्मा है, या शरीर से अलग कोई आत्मा है,** ऐसा तुझे संशय है क्योंकि तू वेद पदो का अर्थ बराबर समझा नहीं है, कारण की तू **''विज्ञानधन ऐवैतेभ्योभूतेभ्यः''** इत्यादि वेद पदो से ऐसा समझ रहा है कि, भूतो से आत्मा अलग नहीं है परंतु **''सत्येनलभ्यस्तपसाहि ऐष ब्रह्मचर्चेण नित्यं ज्योतर्मयो शुद्धो, यंहिपस्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः''** यानि यह ज्योतिर्मय शुद्ध आत्मा सत्य से, तप से और ब्रह्मचर्य से प्राप्त की जा सकती है, यानि जानी जा सकती है । इस आत्मा को संयमित आत्मा वाले साधु परुष देख सकते है । इन वेदपदो से पांच भूतो से अलग आत्मा है ऐसा सिद्ध होता है, इसलिये शरीर यही आत्मा है, अलग नहीं, यह तेरी मान्यता बराबर नहीं है फिर **''विज्ञानधन ऐ वैतेभ्यो भूतेभ्यः''** इस पद का अर्थ भी इंद्रभूति को जिस तरह समझाया था उसी तरह विस्तार से प्रभु ने वायुभूति को भी समझाया । यह सुन शंका दूर होने से प्रतिबोध

पाये हुए वायुभूति भी अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यो सहित प्रभुचरणो में नम्र भाव से झुक गये । प्रभु के पास दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य हुए और प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर, द्वादशांगी की रचना की ।

वैशाख सुद ११ के दिन समवसरण में ही अपने ५०० शिष्यो के साथ ४२ वर्ष की उम्र में दीक्षा ले ली, सदा के लिये अणगार साधु बने । उम्र में भी वे दोनों भाइयों से छोटे थे उन्होंने ४२ वर्ष में दीक्षा ली एंव २८ वर्ष तक चारित्र पालकर वे ७० वर्ष की उम्र में मोक्ष में गये । २८ वर्ष के चारित्र पर्याय में भी वे १० वर्ष तक छद्मस्थ रहे व १८ वर्ष केवली के रुप में विचरण किया । उम्र में भले दोनों बडे भाइयों से छोटे थे परंतु केवली पर्याय में वे दोनो से बडे थे ।

चौथे आरे में जन्मे हुए एवं वज्रऋषभनाराच संघयणं तथा समचतुरस्त्र संस्थान वाले पूज्य वायुभूति गौतम ७० वर्ष की अंतिम उम्र में राजगृही पधारकर अंतिम एक मास की संलेषणा कर भगवान महावीर के समय में ही निर्वाण पाये, मोक्ष में गये ।

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

जैन विज्ञान अपूर्व-अद्भूत ज्ञान का खजाना है । चार शरणों का स्वीकार करते हुए हम **''केवली पन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि''** कहते है । हमारा धर्म कैसा ? मेरा माना हुआ ? किसी ने बताया हुआ ? नहीं नहीं मेरा धर्म तो केवली भगवंतो ने कहा हुआ है । उसमें कहीं भी...कभी भी क्षति हो ही नहीं सकती । केवली भगवंतो ने जो अपने अनंत ज्ञान में देखा वहीं हमें बताया है । केवलज्ञान के अगाध सागर में से श्रुतज्ञान की गंगा प्रवाहित हुई । उसमें से हमारे पर उपकार के लिये पुज्यपाद हरिभद्रसूरि महाराज साहेब ने संक्षिप्त में हमें बोध दिया है ।

हमारे जंबुद्वीपकी परिधि निकालने की रीत हमने जान ली अब हम आगे बढेंगे । और जंबूद्वीप के क्षेत्रफल को जाननेका पुरुषार्थ करेंगे ।

सत्तेवय कोडिसया णउंआ छप्पन सय सहस्साइं ।
चउणउयं च सहस्सा, सयं दिवड्ढं च साहियं ।।९।।
गाउअमेगं पनरस-धणुसया तह धणूणि पन्नरस ।
सट्ठिं च अंगुलाइं जंबुदीवस्स गणियपयं ।।१० ।।

अर्थ :- सातसौ नब्बे करोड छप्पन लाख, चौराणवे हजार, एकसो पचास योजनसे जादा एक गाऊ, एक हजार पांचसौ पंद्रह धनुष्य एवं आठ अंगुल जंबूद्वीप का क्षेत्रफल है ।

क्षेत्रफल निकालनेकी रीत -

सातवी गाथामें क्षेत्रफल निकालने की रीत बताते हुए कहा है कि ''परिधि को व्यास के (पाव)१/४ भाग से गुणणे से गोल वस्तुका क्षेत्रफल आता है ।

परिधि x ''पा'' व्यास = क्षेत्रफल

३१६२२७ (योजन) ३ (गाऊ) १२ (धनुष्य) १३।। (अंगुल) x २५००० (''पा'' व्यास)

१) योजन - ३१६२२७ x २५००० = ७९०५६७५००० योजन

२) गाऊ - ३ x २५००० = ७५००० गाऊ

३) धनुष्य - १२८ x २५००० = ३२००००० धनुष्य

४) अंगुल - १३।। x २५००० = ३३७५०० अंगुल

उपर्युक्त अलग अलग आये हुए जवाबों को एकसाथ करने के लिये अंगुल - धनुष्य - गाऊ के योजन मे परिवर्तित करना होगा ।

९६ अंगुल का एक धनुष्य होता है अतः अंगुल को ९६ से भागाकार करनेपर ३३७५००० ÷ ९६ =

३५१५ $\frac{६०}{९६}$ धनुष्य.

पहले के धनुष्य में ये धनुष्य मिलाकर उसके गाऊ करने के लिये २००० से भागाकार करने पर -

३२००००० + ३५१५ = ३२०३५१५ ÷ २००० = १६०१ $\frac{१५१५}{२०००}$ गाऊ.

पहले के गाऊ में मिलाकर उसके योजन करने के लिये ४ से भागाकार करने पर -

७५००० + १६०१ = ७६६०१ ÷ ४ = १९१५० $\frac{१}{४}$ योजन

पहले के योजन में ये योजन मिलाने पर

७९०५६७५००० + १९१५० = ७९०५६९४१५० योजन

अतः जबुद्वीप का कुल क्षेत्रफल - ७९०५६९४१५० योजन १ गाऊ १५१५ धनुष्य ६० अंगुल.

जंबूद्वीप की परिधि और क्षेत्रफल तो हमने जान लिया परंतु इस जंबुद्वीप में क्या है ? कहाँ क्या है ? इसकी जानकारी पाने के लिए हमें सविशेष प्रयत्न करना है । सर्व प्रथम इस ''लघु संग्रहणी'' में वासक्षेत्र का विचार करने में आया है, वह जानने का प्रयत्न करेंगे ।

भरहाइ सत्त वासा, वियड्ढ चउ चउरतिंस वट्टि यरे ।
सोलस वक्खारगिरि, दो चित्त विचित्त दो जमगा ।।११।।
दोसय कणयगिरीणं, चउ गयदंता य तह सुमेरु अ ।
छ वासहरा पिंडे, एगुणसत्तरि सया दुन्नी ।। १२ ।।

गाधार्थ :- भरत आदि सात वासक्षेत्र है (रहने के स्थान)

चार वैताढ्य गोल और चौत्तीस लम्बे याने दीर्घ वैताढ्य पर्वत है । सोलह वक्षस्कार पर्वत है..... दो चित्र एवं विचित्र उसी तरह दो यमक (समक) पर्वत है ।

दो सौ कंचनगिरि, चार गजदन्तगिरि, मेरुपर्वत और छह वर्षधर पर्वत ऐसे कुल दो सौ उनहत्तर पर्वत है ।

वास क्षेत्र

जंबुद्वीप में कुल सात वासक्षेत्र है ।

जंबुद्वीप के मध्य में महाविदेह क्षेत्र है । उसके दोनो बाजु तीन-तीन क्षेत्र है ।

महाविदेह के उत्तर में रम्यकक्षेत्र, हिरण्यवंत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र है ।

महाविदेह के दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र, हिमवंत क्षेत्र और भरत क्षेत्र है ।

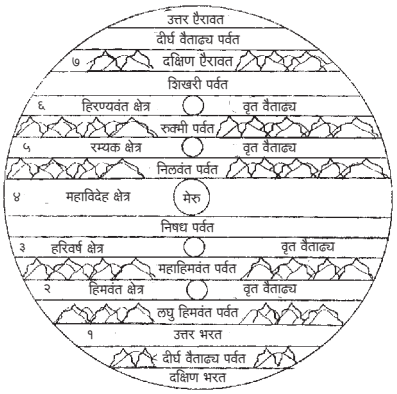

जंबुद्वीपके सात वासक्षेत्र

महाविदेह क्षेत्र एक लाख योजन पूर्व-पश्चिम लंबा है । दोनों बाजु के क्षेत्रोंकी लंबाई समान नहीं है । उपर निर्दिष्ट सातो क्षेत्रों के नाम शाश्वत है । क्षेत्र के नाम उस उस क्षेत्र के अधिष्ठायक देवों के नाम से रखे गये है । क्षेत्र का नाम और अधिष्ठायक देव के नाम समान ही हैं ।

इन सात क्षेत्रों में से महाविदेह क्षेत्र (देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर) भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र ये तीनों कर्मभूमियाँ है । इन सात क्षेत्रोमेंसे बाकी रहे हुए हिमवंत, हरिवर्ष, रम्यक और हैरण्यवंत ये चार क्षेत्र अकर्मभूमियाँ है ।

जहाँ असि (शस्त्रकला), मसि (लेखनकला) और कृषि (खेती की कला) का व्यवहार चलता हो, समाज व्यवस्था हो, राज्य व्यवस्था हो, लग्न-भोजन एवं धर्म व्यवस्था हो (सर्व काल या मर्यादित काल के लिये) उसे कर्मभूमि कहते है । आयुष्य पूर्ण होने पर जीव पाँचो गतियों में जानेवाले होते है ।

कर्मभूमि अकर्मभूमि का चित्र

जिस क्षेत्र में उपरोक्त व्यवस्था न हो, युगलिया के रुप में जन्म लेने वाले भाई बहन, पति पत्नी भाव से रहते हो, शरीर स्वरुपवंत और लक्षणयुक्त होता हो, जीवन की तमाम भोग उपभोग की सामग्री कल्पवृक्ष से प्राप्त होती हो वह क्षेत्र युगलिक क्षेत्र अथवा अकर्मभूमि कहलाता है । आयुष्य पूर्ण कर जीव देवलोक में जाते है ।

सात वासक्षेत्र :-

नं.	वासक्षेत्र का नाम	आकार	स्पर्श	प्रमाण
१.	**भरत क्षेत्र**	**रोटी की छोटी टूटी हुई किनार जैसा**	**तीन बाजु लवणसमुद्र**	**५२६** $\frac{६}{१९}$
२.	**हिमवंत क्षेत्र**	**पलंग जैसा लंब चौरस**	**पूर्व पश्चिम लवणसमुद्र**	**२१०५** $\frac{५}{१९}$
३.	**हरिवर्ष क्षेत्र**	**पलंग जैसा लंब चौरस**	**पूर्व पश्चिम लवणसमुद्र**	**८४२१** $\frac{१}{१९}$
४.	**महाविदेह क्षेत्र**	**पलंग जैसा लंब चौरस**	**पूर्व पश्चिम लवणसमुद्र**	**३३६८४** $\frac{४}{१९}$
५.	**रम्यक क्षेत्र**	**पलंग जैसा लंब चौरस**	**पूर्व पश्चिम लवणसमुद्र**	**८४२१** $\frac{१}{१९}$
६.	**हैरण्यवंत क्षेत्र**	**पलंग जैसा लंब चौरस**	**पूर्व पश्चिम लवणसमुद्र**	**२१०५** $\frac{५}{१९}$
७.	**ऐरावत क्षेत्र**	**रोटी की छोटी टूटी हुई किनार जैसा**	**तीन बाजु लवणसमुद्र**	**५२६** $\frac{६}{१९}$

श्रावक - दिनकृत्य जिन दर्शन

देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन याने जिन शासन का प्रवेशद्वार । जिन शासन के अभ्यास का प्रारंभ जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन से होता है । जिनेश्वर परमात्मा का अनुयायी हो वही जैन कहलाता है । अतः जो जैन हो उसे अपने आराध्यदेव जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन नियमित करना ही चाहिये । जिनेश्वर के दर्शन में कैसी अद्‌भूत शक्ति है -

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम् । दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम् ।।

देवाधिदेव का दर्शन पाप का नाश कराता है.... स्वर्ग-अपवर्ग की सिढी है..... परंपरासे मोक्ष का साधन है । इस तरह जिनदर्शन का महत्व..... उससे होनेवाले लाभों का वर्णन विस्तार से करते हुए बताते है .....

१) श्री जिनेश्वर परमात्मा के जिनालय में जाने की इच्छा होती है, तो एक उपवास का लाभ होता है....
२) श्री जिनमंदिर में जाने को खडा होता है तो दो उपवास का लाभ होता है ।
३) श्री जिनमंदिर जाने के लिये तैयार होता है तो तीन उपवास का लाभ होता है ।
४) श्री जिनमंदिर जाने के लिये कदम बढाता है तो चार उपवास का लाभ होता है ।
५) श्री जिनमंदिर की ओर चलते चलते पांच उपवास का लाभ होता है ।
६) श्री जिनमंदिर के आधे रास्ते पर पहुँचने पर पंद्रह दिन के उपवास का लाभ होता है ।
७) श्री जिनमंदिरके दर्शन करने मात्र से तीस उपवास का लाभ होता है ।
८) श्री जिनमंदिर के पास पहुँचने मात्र से छह महिने के उपवास का लाभ होता है ।
९) श्री जिनमंदिर के द्वार तक पहुँचने पर बारह महिनों के उपवास का लाभ होता है ।
१०) श्री जिनेश्वर परमात्मा के प्रतिमा को प्रदक्षिणा देने पर सौ वर्ष के उपवास का लाभ होता है ।
११) श्री जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन पर हजार उपवास का लाभ होता है ।
१२) श्री जिनपूजा करने पर, पुष्पमाला चढाने पर अनेकगुणा लाभ है ।
१३) चामर नृत्य भाव पूजा करने से अनंतगुणा पुण्य प्राप्त होते है ।

क्या जिनदर्शन से ऐसे अद्‌भूत लाभ की प्राप्ति हो सकती है । हां ! परमात्मा दर्शनसे दर्शन की भावना से अंतःकरण में, हृदय में जो शुभ और शुद्ध भावों की परंपरा निर्माण होती है वे भाव जैसे जैसे बढते जाते है, वैसे वैसे अधिक से अधिक पुण्य की प्राप्ति होती जाती है..... जिस जिनदर्शन में मुक्ति सुख की प्राप्ति कराने की ताकत है उससे प्रचंड पुण्य की प्राप्ति तो सहज है..... उसमें शंका करनेका कोई कारण ही नहीं है.....

मंदिर में जाने की विधि

देवाधिदेव के दर्शन करने जाने वाला श्रावक अपनी सब ऋद्धि से, संपूर्ण दिप्ती से (कांति से), संपूर्ण शक्ति से, बल से पूरे पराक्रम से, जैन शासन का महिमा बढे इस रीति से विधिपूर्वक उचित चिंतन करता हुआ मंदिर जाय..... प्रभुजी का दर्शन, वंदन पूजा करने जाय ।

एकबार प्रभु महावीर नगरी के बहार पधारे तब दशार्णभद्र राजा ने अभिमान से विचार किया किसीने भी वंदन किया न हो उस तरह बडे ही ठाठमाठ से मैं प्रभुजी का वंदन करने जाऊं । ऐसा सोचकर अपनी संपूर्ण ऋद्धि सहित, अपने पुरुषों को यथायोग्य शृंगार कराकर, हर हस्ती के दंतशूळ पर सोने-रुपे के शृंगार रचाकर चतुरंगिणी सेना सहित, अपने अंतःपुर के सदस्यों को सोने चांदीकी पालखियों में और अंबाडियों में बैठाकर सबको साथ लेकर बहुत ही ठाठमाठ से भगवंत को वंदना करने आया । उस वक्त अपने साधर्मिक का अभिमान दूर करने हेतु सौधर्मेन्द्र ने श्री वीर को वंदना करने आते हुए दैविक ऋद्धि की विकुर्वणा की ।

प्रत्येक को पांचसौ और बारह मस्तक ऐसे चौसठ हजार हाथी बनाये....उनके एक एक कुंभस्थल पर आठ आठ दंतुशूळ और आठ आठ बावडी, एक एक में एक लाख पंखुडीवाले आठ आठ कमल, हरेक कमल पर एक एक कर्णिका और उसके उपर प्रासादवतंसक है, एक एक पंखुडी में बत्तीस नाटकों के साथ गीत गान हो रहे थे । ऐसे विविध आश्चर्यप्रद दृश्यों से अपनी आठ आठ अग्रमहिषीयो (पटरानीयों) के साथ हरेक में एक एक रुप से ऐरावत हाथी पर बैठे हुए सौधर्मेन्द्र अत्यानंदपूर्वक दैवी बत्तीस नाटक देखते है ।

इस प्रकार बहुत ठाठमाठ वाली रचना कर जब अनेक रुपों को धारण करने वाला इन्द्र आकाश से नीचे उतरकर भगवान को वंदन करने लगा । तब इंद्र की ऋद्धि देख कर दशार्णभद्र राजा का अभिमान उतर गया । वह खेद करने लगा । खेद का कारण अभिमान जानकर वैराग्यवासित हुआ । भगवंत के पास आकर हाथ जोडकर अपनी बात बताकर कहने लगा - ''इस असार संसार में जो कषाय है वही आत्मा को दुःखदायी है । जब मैने इतना अभिमान किया तब मुझे उसी से इतना खेद करना पडा । इस संसार में कोई भी किसी का नहीं है । ये मेरी इतनी राजऋद्धि किस काम की ? यह मेरी राजऋद्धि और यह मेरा परिवार अंततः दुःखदायी लगने के कारण अब मैं उससे बाह्य और अभ्यंतर रुप से मुक्त होना चाहता हूँ अतः हे स्वामी ! अब मुझे अपनी चरण सेवा देकर आप मेरा उद्धार कीजिये ।''

ऐसा कहकर दशार्णभद्र राजाने तत्काल दीक्षा ली । यह देखकर सौधर्मेन्द्र उठकर दशार्णभद्र राजर्षि को वंदन कर कहने लगा '' आपने आपकी प्रतीज्ञा सिद्ध ही की । मैं ऐसी ऋद्धि बनाने में समर्थ हूँ, परंतु आप जिस तरह इस बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर दिया वैसा मैं त्याग करने में समर्थ नहीं हूँ । अतः हे मुनिराज ! आप धन्य है ।''

इस प्रकार दुसरों को धर्म से प्रभावित करने के लिये, धर्म दिलाने के लिये एवं शासन की प्रभावना ऋद्धिवंत श्रावक ने आडंबर सहित मंदिर में दर्शन के लिये जाना चाहिये । सामान्य संपदा वाले श्रावकों ने अहंकार को त्याग कर विनयशील होकर कुलाचार और संपदानुसार वस्त्र-आभूषणों का आडंबर कर अपने भाई-मित्र-स्वजन समुदाय को साथ लेकर देवाधिदेव के दर्शन करने जाना चाहिये ।

मंदिर में प्रवेश करने का क्रम

आश्रयन् दक्षिणां शाखां, पुमान् योषित्वदक्षिणां ।
यतः पूर्वप्रविश्यांत, र्दक्षिणेनार्हिणां ततः ।।

मंदिर की दाहिनी दिशा की शाखा के आश्रय से दाहिनी बाजू से पुरुषों ने मंदिर में प्रवेश करना चाहिये

। बांयी बाजूकी शाखा को आश्रय कर स्त्रियों ने बांयी बाजू से प्रवेश करना चाहिये । मंदिर के द्वार के आगे के सोपान पर स्त्री अथवा पुरुष ने दाहिना पैर रखकर ही उपर चढना । यह अनुक्रम स्त्री और पुरुष दोनों के लिये समान है ।

अब श्रावक मन,वचन, काया से घर के व्यापार, चिंतन आदि का त्याग कर निस्सिही बोलकर मंदिर में प्रवेश करता है । ''नमो जिणाणं'' बोलकर मूलनायक के दर्शन करते हुए आधा झुककर (अर्धावनत) प्रणाम करे । भक्ति से उल्लसित मन से एकाग्र चित्त से देवाधिदेव के दर्शन कर धन्यता का अनुभव करें ।

अब दो हाथ जोडकर पग पग पर जीवरक्षा का उपयोग रखते हुए जिनेश्वर भगवंत के गुणों में एकाग्र चितवाले बनकर भगवान को अपने दाहिनी ओर रखकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति करने के लिये तीन प्रदक्षिणा दें ।

प्रदिक्षणा देते हुए समवशरण की तरह चार रुपों से वीतराग का चिंतन करना । गभारे में (गर्भगृह में) पीछे, दाहिने, बायें तीन दिशाओं में स्थापित तीन बिंबो को (मंगलमूर्ति) वंदन किया जाय इस हेतु सब देहरासरों में मूल गर्भगृह के तीन दिशाओं में मूलनायक के नाम के बिंब बनाकर प्रायः स्थापित किये जाते है । और यदि इस तरह बिंब स्थापित किये गये न हो तो भी मन में कल्पना कर मूलनायक के नाम से ध्यान करें ।

तीन प्रदक्षिणा देकर हर्षोल्लास से मुखकोष बांधकर जिनराज की प्रतिमा पर से अगले दिन का निर्माल्य उतार कर मोरपंख से प्रभुकी प्रमार्जना करें । उतारे हुए निर्माल्य को पवित्र निर्जीव स्थान पर कुंथुवा जीवोंकी उत्पत्ति न हो इस तरह जयणा से डालने का उपयोग रखें । निर्माल्य और स्नात्रजल एक स्थान पर न डाले जिससे आशातना का संभव न रहे ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

दर्शनावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेद हैं - चार दर्शन के आवरण और पांच निद्रा ।

यह दर्शनावरणीय कर्म प्रतिहारी याने द्वारपाल जैसा है । द्वारपाल द्वारा अटकाया हुआ व्यक्ति जिस तरह राजा के दर्शन नहीं कर सकता, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म व्यक्ति को वस्तु के सच्चे स्वरुप के दर्शन से वंचित रखता है ।

चक्खु-दिट्ठि-अचक्खु-सेसिंदिअ-ओहि केवल हिं च ।
दंसण मिह सामन्नं तस्सा-ऽ वरणं तयं चउ - हा ।। १० ।।

गाथार्थ - पदार्थो का सामान्य बोध दर्शन कहलाता है । चक्षु के द्वारा जानना चक्षु दर्शन है, शेष इंद्रियों से जानना अचक्षु दर्शन है । इसके अतिरिक्त अवधिदर्शन एवं केवल दर्शन होने से दर्शन चार प्रकार का है । उसका आवरण भी चार प्रकार का है ।।१०।।

१. चक्षु याने आंख से देखना वह चक्षुदर्शन कहलाता है ।

२. बाकी चार इंद्रिय से देखना वह अचक्षुदर्शन कहलाता है ।

३. अवधिदर्शन - अवधिज्ञान से पूर्व होता रुपी द्रव्य विषयी सामान्य बोध वह अवधि दर्शन कहलाता है ।

४. केवल दर्शन - लोकालोक के सर्व भाव विषयक सामान्य बोध को केवल दर्शन कहते है । (सामान्य उपयोग - सामान्य रुप से देखना वह दर्शन कहलाता है । विशेषोपयोग - विशेष रुप से जानना वह ज्ञान कहलाता है) छद्मस्थ जीवों को प्रथम दर्शनोपयोग होता है फिर ज्ञानोपयोग होता है । जबकि केवलज्ञानी को प्रथम ज्ञानोपयोग होता है, फिर दर्शनोपयोग होता है ।

चक्षुदर्शन को आवृत करे वह **चक्षुदर्शनावरणीय कर्म** ।

अचक्षुदर्शन को आवृत करे वह **अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म** ।

अवधिदर्शन को आवृत करे वह **अवधिदर्शनावरणीय कर्म** ।

केवल दर्शन को आवृत करे वह **केवलदर्शनावरणीय कर्म** ।

एकेंद्रिय, द्विइंद्रिय और तेइंद्रिय को मूल से चक्षु होते ही नहीं वह चक्षु दर्शनावरणीय कर्म के उदय से ।

चउरेंद्रिय और पंचेन्द्रिय को चक्षु होते हैं पर अंधकार में नहीं दिखता - कम दिखाई देना, चक्षु तेजहीन बनना इन सबमें चक्षुदर्शनावरणीय का उदय ही काम करता है ।

पंचेंद्रिय की पांचो पांच इंद्रिया पूर्ण हो .... फिर भी उसमें कुछ अधुरापन हो.. जिससे गूंगे -बहरे हो जायें वह भी अचक्षुदर्शनावरणीय का उदय कहलाता है ।

अवधिदर्शनावरणीय केवलदर्शनावरणीय कर्म है तो मनः पर्यव दर्शनावरणीय क्यों नहीं ? ऐसा प्रश्न सहज है । परंतु शास्त्रो के अनुसार मनः पर्यवज्ञान में जो ग्रहण किया जाता है वह विशेषोपयोग है, वहाँ सामान्योपयोग नहीं होने से दर्शन नहीं है, ज्ञान ही है ।

पांच निद्रा

सुह - पडिबोहा निद्दा, निद्दा - निद्दाय दुक्ख - पडिबोहा ।
पयला ठिओवविट्ठस्स पयल - पयला उ चंकमओ ।।११।।

गाथार्थ - जागने पर सुखपूर्वक जागृत हो, वह निद्रा है । दुःखपूर्वक (मुश्किल से) जागृत हो वह निद्रा-निद्रा है । खडे खडे अथवा बैठे बैठे नींद लेना प्रचला है, तथा चलते चलते नींद लेना प्रचला प्रचला है ।

१. सहजता से धीमी आवाज से जाग जाता है, सरलता से जाग जाय वह **निद्रा** कहलाती है ।

२. बहुत जगाने के पश्चात भी मुश्किल से जागृत होता है उसे **निद्रानिद्रा** कहते हैं ।

३. खडे खडे या बैठे बैठे नींद लेना वह **प्रचला** कहलाती है ।

४. प्रचला से गहरी, चलते चलते भी नींद ले वह **प्रचला-प्रचला** कहलाती है ।

आपकी निद्रा कैसी है ?

किसी आहट पर सुख पूर्वक जाग जाते हैं ?

ढोल-नगाडा बजे तो भी खबर न हों ?

सामायिक में माला गिनते या व्याख्यान सुनते नींद कर ले ?

पूजा की या बस की लाईन में खडे खडे नींद का झोका आ जाय ?

नींद में चलने की या चलते चलते नींद लेने की आदत तो नहीं न ?

नींद और आलस बढाये उतना बढते है, घटाये उतना घटते हैं । अपना प्रयास नींद घटाने का या बढाने का ? ज्यादा नींद लेने से भी दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है ।

अब पाँचवी भयानक निद्रा बताते है -

दिण चिंतिअत्थ करणी थीणद्धी अद्ध - चक्की अद्ध बला ।
महु लित्त खग्ग धारा लिहणं व दु हा उ वेअणिअं ।।१२।।

गाथार्थ - दिन में सोचा हुआ कार्य जिस निद्रा के वशीभूत होकर जीव रात्रि में करता है, उसे स्त्यानर्द्धि (थीणद्धी) निद्रा कहते हैं । थिणद्धी निद्रा वाले जीव का बल अर्ध चक्रीश्वर (वासुदेव) के बल से आधा बल होता है ।

वेदनीय कर्म मधुलिप्त तलवार को चाटने के समान है यह दो प्रकार का है - १) शाता वेदनीय २) अशाता वेदनीय कर्म ।

(प्रस्तुत गाथा में निद्रा पंचक के पाँचवे भेद थीणद्धि निद्रा का एवं वेदनीय कर्म का प्रारंभिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।)

दिन में चिन्तित कार्य हो उसे करने की स्वयं की शक्ति न हो, अशक्य लगता हो वह कार्य रात्रि के समय नींद में करे फिर भी जागृत न हो, ऐसी निद्रा थिणद्धी निद्रा है । वज्रऋषभनाराच संघयण वाले को यह निद्रा हो तब अर्ध चक्रवर्ती से आधा बल होता है ।

सेवार्त (छेवट्ठा) संघयण वाले का भी दुगना - तिगुना बल बढता है । ऐसी निद्रा वाला जीव प्रायः नरक में जाता है ।

सुखपूर्वक जाग सकें ऐसी निद्रा लाकर दर्शनशक्ति को ढँकने वाला कर्म **निद्रा दर्शनावरणीय कर्म** मुश्किल से जाग सकें ऐसी प्रगाढ निद्रा लाकर खुली हुई दर्शनशक्ति को ढंकने वाला कर्म वह **निद्रा निद्रा दर्शनावरणीय कर्म**।

खडे या बैठे नींद आ जाये ऐसी दर्शन शक्ति को ढंकने वाला कर्म वह **प्रचला दर्शनावरणीय कर्म**।

चलते चलते नींद आ जाये ऐसी दर्शन शक्ति को ढंकने वाला कर्म वह **प्रचला-प्रचला दर्शनावरणीय कर्म**।

दिन में चिन्तित कार्य नींद मे कर डाले फिर भी जाग न सके ऐसी खुली रही हुई दर्शनशक्ति को ढंकने वाला कर्म वह **थिणद्धी दर्शनावरणीय कर्म**।

वेदनीय कर्म

मधुलिप्त तलवार को चाटने के समान वेदनीय कर्म है। ऐसी तलवार चाटते समय प्रथम मधु का स्वाद आने पर जीव सुख का अनुभव करता है परंतु दूसरे ही पल तलवार की धार से घायल जीभ दुःख का अनुभव कराती है। उसी तरह इंद्रियों के भोगों को भोगते समय जीव सुख का अनुभव करता है, परंतु उसके विरह अथवा विपाक में दुःख का अनुभव करता है।

पाँच इंद्रियो के मनोकूल विषयों के उपभोग से एक प्रकार के सुख का अनुभव कराने वाला कर्म वह **शाता वेदनीय कर्म**।

पाँच इंद्रियों के मनचाहे विषयों के विरह में और इंद्रियों के अनचाहे विषयो के संयोग से एक प्रकार का दुःख का कंटाले का अनुभव कराने वाला कर्म **अशाता वेदनीय कर्म**।

ओसन्नं सुर - मणुए, सायम-सायं तु तिरिअ - निरएसु ।
मज्जं व मोहणीअं, दु विहं दंसण - चरण मोहा ।। १३ ।।

गाथार्थ - देव और मनुष्य गति में अधिकतर शाता वेदनीय कर्म का एवं तिर्यंच तथा नरक गति में अधिकतर अशाता वेदनीय का उदय होता है। मदिरा पान के समान मोहनीय कर्म दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय रुप दो प्रकार का कहा गया है।

प्रायः करके देव-मनुष्य गति में शाता कही फिर भी एकान्त नहीं, देवलोक में भी इर्ष्या आदि के कारण दुःख है। मनुष्य भव में भी रोग -शोक-गर्भवेदना-जन्म-मृत्यु आदि में अशाता है। नारक और तिर्यंच को दुःख अशाता होते हुए भी जिनेश्वर परमात्मा के कल्याणकों में शाता होती है। तिर्यंच भी गाडी में फिरते और सुख भोगते देखने मिलते हैं , जहाँ वे शाता का अनुभव करते हैं।

परंतु देव-मनुष्य को शाता ज्यादा अशाता कम संभव है।

नारक और तिर्यंच को अशाता ज्यादा शाता कम संभव है।

मोहनीय कर्म

मोहनीय कर्म को कर्माधिराज.... कर्मो का राजा कहा गया है। यह मोहनीय कर्म मदिरा पान समान है। कोई व्यक्ति मदिरापान करे याने उस पर मदिरा का नशा छा जाता है। ऐसी व्यक्ति, ''क्या करने जैसा, क्या नहीं

करने जैसा'' इसका विवेक गुमा बैठती है । नहीं बोलने का बोले.... न करने का करे । इस जीव के उपर भी जब मोह का नशा छा जाता है, तब वह भी धार्मिक या आध्यात्मिक विवेक गुमा बैठता है । आत्मा के हित को भुलाकर सांसारिक भोगमय प्रवृत्ति में लीन बनता है ।

जीव को बैचेन करे.... विवेक से भ्रष्ट करे वह मोहनीय कर्म ।

यह मोहनीय कर्म के दो प्रकार है -

१) दर्शन मोहनीय और २) चारित्र मोहनीय

यथावस्थित जीवाजीवादी तत्व पर श्रद्धा वह **''दर्शन''** है, उसमें अस्थिर करे, उसे मलिन करे वह **दर्शन मोहनीय कर्म** है ।

चारित्र याने शुद्ध आचरण... उसमें दोष लगावे या चारित्र पालन मे शिथिल बनाये वह **चारित्र मोहनीयकर्म** है ।

दंसण मोहं ति-विहं सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्ध - विसुद्धं, अ विसुद्धं तं हवइ कमसो ।।१४।।

गाथार्थ - दर्शन मोहनीय कर्म तीन प्रकार है - १) सम्यक्त्व मोहनीय २) मिश्र मोहनीय ३) मिथ्यात्व मोहनीय । अनुक्रम से पुर्वोक्त तीनो भेद शुद्ध, अर्धशुद्ध और अशुद्ध पुंज रुप होते हैं ।

१. सम्यवत्व मोहनीय - मिथ्यात्व मोहनीय के जिन दलिकों में मिथ्यात्व लाने की शक्ति विशेष रुप से हीन हो चुकी है, नहींवत हो गई है, दर्शन मोहनीय कर्म के जिन दलिको के उदय में मिथ्यात्व नहीं होता उस शुद्ध पुंज को **सम्यक्त्व मोहनीय** कहते हैं ।

मिथ्यात्व एवं मिश्र मोहनीय की अपेक्षा से इसे शुद्ध पुंज कहा गया है वास्तविकता तो यह है कि सम्यक्त्व मोहनीय सम्यकत्व नहीं देता अपितु सम्यक्त्व में शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा आदि छोटे छोटे दोष लगाकर मलिन बनाता है । अतः इसका भी त्याग करके सुलसा, श्रेणिक आदि की तरह निर्मल सम्यक्त्व को प्रकट करना चाहिये ।

२. मिश्र मोहनीय - मिथ्यात्व मोहनीय के जिन दलिकों की आधी शक्ति नष्ट हो चुकी है, उन अर्धशुद्ध पुंज को **मिश्र मोहनीय** कहते हैं ।

मिश्र मोहनीय के उदय में जीव आत्मा में न श्रद्धा रखता है न अश्रद्धा रखता है ।

३. मिथ्यात्व मोहनीय - मिथ्यात्व मोहनीय के जिन दलिकों की शक्ति पूर्ववत् है, बिल्कुल नष्ट नहीं हुई है, उस अशुद्ध पुंज को **मिथ्यात्व मोहनीय** कहते हैं । यह सम्यग् दर्शन रुपी रत्न का अपहरण करता है और कुदेव आदि में श्रद्धा करवाता है ।

धान को ओखली में कूटा जाये तो उस धान के तीन भेद कर सकते हैं १) सपूर्ण छिलका रहित २) अर्ध छिलकेवाले ३) जैस थे वैसे छिलके सहित ।

इसी तरह आत्मा जब उपशम सम्यकत्व पाता है, तब अध्यवसाय के बल से पूर्व बांधे हुए- सता में रहे हुए मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के पुद्गलों के उपरोक्त प्रकार से तीन विभाग करता है ।

उपरोक्त तीनो कर्म आत्मा के अनंत दर्शन गुण का हनन करते है.... उसका नाश करते हैं, इसिलिये यह **''दर्शन मोहनीय''** कहलाता है ।

जीय-अजीय - पुण्ण - पावा - सव संवर बंध - मुक्ख - निज्जरणा ।
जेणं सद्दहइ तयं, सम्मं खइगा - इ बहु - भेअं ।। १५ ।।

गाथार्थ - जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, मोक्ष और निर्जरा इन नौ तत्वों पर जिसके द्वारा श्रद्धा प्रकट होती है उसे सम्यकत्व कहते हैं । वह सम्यक्त्व क्षायिक आदि अनेक भेदों वाला हैं ।

चेतना लक्षण वाला **जीवतत्व** १४ भेद वाला है ।

जड लक्षण वाला **अजीव तत्व** १४ भेद वाला है ।

शुभ प्रकृति का उदय वह **पुण्य-तत्व** ४२ भेद वाला है ।

अशुभ प्रकृति का उदय वह **पाप-तत्व** ८२ भेद वाला है ।

शुभ अशुभ कर्म आने के मार्ग वह **आश्रव तत्व** ४२ भेदवाला है ।

आने वाले कर्मो को रोकना वह **संवर तत्व** ५७ भेद वाला है ।

कर्म का आत्मा के साथ जुडना वह **बंध तत्व** - ४ भेदवाला है ।

कर्म का संपूर्ण नाश (वियोग) वह **मोक्षतत्व** ९ भेद वाला है ।

कर्म का आंशिक त्याग वह **निर्जरा तत्व** है ।

इन नौ तत्व पर श्रद्धा वह, **सम्यक्त्व** कहलाता है । इस सम्यग् दर्शन के अनेक प्रकार के भेद हैं । हम यहाँ मुख्य पाँच भेदों का विचार करेंगे - १) क्षायिक २) क्षायोपशमिक ३) औपशमिक ४) वेदक ५) सास्वादन ।

१. क्षायिक सम्यकत्व - यह अपौद्गलिक शुद्ध सम्यक्त्व है । दर्शन सप्तक का क्षय याने सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र-मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय इन सात प्रकृति के संपूर्ण क्षय से इस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है । यह सम्यग् दर्शन तीर्थंकर परमात्मा के समय में वज्रऋषभनाराच संघयण वालों को ही होता है । संपूर्ण भवचक्र में एक बार ही प्राप्त होने वाला यह सम्यक्त्व मनुष्य भव में ही पा सकते हैं ऐसा यह सम्यक्त्व आने के पश्चात कभी वापस जाता नहीं इससे सादि अनंत है । सामान्य से इस सम्यक्त्व वाला जीव तीसरे अथवा पाँचवे भव में मोक्ष जाता है ।

२. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व - यह पौद्गलिक - अशुद्ध सम्यक्त्व है - तीन दर्शन मोहनीय और चार अनंतानुबंधी कषाय (दर्शन सप्तक) के कुछ क्षय और कुछ उपशम से इस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है । यह सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य काल अंतर्मुहुर्त है और उत्कृष्ट काल छासठ सागरोपम है ।

३. औपशमिक सम्यक्त्व - यह अपौद्गलिक - अशुद्ध सम्यक्त्व है । तीन दर्शन मोहनीय सत्ता में होते हैं, परंतु आत्मा इन तीनों को ऐसा दबाती है कि उनकी एक भी प्रकृति उदय में न आवे और आत्मा की रुचि का हनन, अपहरण न हो सके । उस समय आत्मा जिस सम्यग् दर्शन से युक्त होता है वह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता

है । जीव को प्रथम इसी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है । उसका समय अन्तर्मुहर्त का ही होता है । यह सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक तक होता है ।

४. वेदक - यह पौद्गलिक अशुध्द सम्यक्त्व है । यह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का ही एक भेद है । जब जीवात्मा मिश्र मोहनीय मिथ्यात्व मोहनीय, अनंतानुबंधी चतुष्क का संपूर्ण क्षय कर लेता है और सम्यक्त्व मोहनीय का क्षय करना प्रारम्भ करता है, तब उसके अन्तिम भाग का क्षय करने से पूर्व समय में आत्मा वेदक सम्यक्त्व युक्त होती है । उसे वेदक सम्यक्त्व कहते है । फिर जीव तुरंत क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

५. सास्वादन सम्यक्त्व - यह अपौद्गलिक - अशुद्ध सम्यक्त्व है ।

यह औपशमिक सम्यक्त्व का ही एक भेद है । औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति में से यदि मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होने वाला हो तो चार अनंतानुबंधी कषाय का उदय होता है और आत्मा उपशम सम्यक्त्व से पतित होकर चौथे गुणस्थानक से दूसरे गुणस्थानक में आ जाती है, उस समय सास्वादन सम्यक्त्व कहलाता है ।

सम्यक्त्व पुद्गल शुद्ध है... विकार करते नहीं तो फिर वे सम्यक्त्व मोहनीय क्यों कहलाते हैं ?

सम्यक्त्व पुद्गल शुद्ध हैं परंतु वे मिथ्यात्व के ही दलिक हैं । तीव्र मोह के उदय में फिर से अशुद्ध होकर मिथ्यात्व मोहनीय बनते हैं । इसिलिये सम्यक्त्व के पुद्गल भी सम्यक्त्व मोहनीय कहलाते हैं ।

व्रताधिराज

मंत्र का राजा नवकार मंत्र है...

तीर्थ का राजा शत्रुंजय तीर्थ है....

पर्व का राजा पर्युषण पर्व है.....

कर्म का राजा मोहनीय कर्म है.....

तो सारे व्रतो का राजा शीलव्रत है.....

यह बात हमारे हृदय में स्वर्ण अक्षरो से लिख कर रखने जैसी है.... जहाँ शील सलामत वहां सब ही सलामत । जहां शील में चूके वहां सब कुछ ही व्यर्थ..... ऐसे अनमोल शील के लिये क्या कहा जाता है ? -

यस्तु स्वदारसन्तोषी, विषयेषु विरागवान् ।

गृहस्थो पि स्वशीलेन, यतिकल्पः स कल्प्यते ।।

जो पुरुष काम आदि विषयो में विशेष राग का त्याग कर अपनी पत्नी में ही संतोष मान प्रवृत्ति करता है, वो गृहस्थ कोटि का होने के बावजूद भी अपने शील के कारण मुनि समान माना जाता है ।

शीलव्रत भी दो विभाग से है देश से और सर्व से । पूज्यनीय साधु साध्वीजी भगवंतो को नववाड पूर्वक संपूर्ण शीलव्रत का पालन करने का है । श्रावक या गृहस्थ के लिये यह संभव नहीं होने से उनके लिये देश से ''स्वदारा संतोष'' व्रत बताने में आया है । स्वस्त्री या स्वपति में संतोष मान सर्व परस्त्रीयो को एवं परपुरुषो को माता-बहन या भाई-पिता समान मानने का है । जहां संतोष है वहां ही सुख है, जहां असंतोष है वहां ही दुःख है, इसलीये ही इस शीलव्रत में भी संतोष महत्व की भूमिका निभाता है । ''स्वदारा संतोष'' व्रत का पालक गृहस्थ उपर बताये अनुसार अपने उच्च शीलधर्म के कारण मुनि - साधु समान माना जाता है ।

हम स्थूलिभद्र एवं सुदर्शन सेठ के वारिसदार है....

हम विजयसेठ एवं विजया सेठानी के संतान है.....

आर्य क्षेत्र के उच्च संस्कारो के रक्षक है.....

हमारे देश के चोर -लुटेरे व हत्यारे भी शील-सदाचार के महान रक्षक एवं आराधक थे.... हम तो

श्रावक है... महावीर के मार्ग का अनुशरण करने वाले है.... हमारे शीलव्रत में कभी भी शिथिलता नहीं होती....हमारे शील सदाचार में कहीं भी कमी नहीं होती । परमात्मा के शासन में श्रावक - श्राविका के लिये बताये हुए बारह व्रतो में चौथे अणुव्रत के रुप में शीलव्रत का परिचय करवा कर हमें उसके अतिचारो से पहचान कराने का प्रयास किया है । हम इस चौथे अणुव्रत को उसके अतिचारो को विस्तार से जानकर जाने-अंजाने में हमें लगते दोषों से विराम पाये, निर्दोष जीवन के स्वामी बने ।

चौथा शीलव्रत यानि मैथुन का त्याग करना, वो ब्रह्मचर्य व्रत है, इस विषय में यथाशक्ति यानि अपनी शक्ति अनुसार पालन करना । जो पूर्ण शक्तिमान श्रावक हो तो अपनी तथा परायी, सारे प्रकार की स्त्रियो को भोगने का त्याग करे, परंतु इतनी शक्ति न हो तो भी अपने पंच की साक्षी में विवाहित स्त्री में संतोष रखना एवं परायी स्त्री का विवर्जन करना इस तरह शीलव्रत जानना । यहां पर स्त्री ने पुरुष का वर्जन जानना । ऐसा व्रत लिया है इसमें प्रमाद के प्रसंग पर जो अतिचार लगा हो तो पांच अतिचारो को शुद्ध करना ।

१) ईत्वर परिगृहितागमन, २) अपरपरिगृहितागमन ३) अनंगक्रिडा ४) परविवाहकरण एवं ५) कामभोगतीव्रभिलाष ।

१) किसी ने वेश्या आदि को थोडे समय के लिये (मास-छः मास) द्रव्य वगैरह देकर खुद ने ग्रहण कर के रखा हो उसे ईश्वर परिगृहिता कहा जाता है, उसके पास जाकर उसके साथ गमन, विलास आदि करे वो **ईश्वरपरिगृहितागमन अतिचार** कहलाता है । या स्वयं वेश्या वगैरह को भाडा देकर रखे व मन में विचार करे कि मैने तो परस्त्री का त्याग किया है, पर यह स्त्री तो किसी की विवाहिता नहीं है, ऐसा विचार कर उसके साथ गमन करे परंतु इससे चेतना बिगड रही है ऐसा विचार नहीं करे वो ईश्वरपरिगृहिता गमनातिचार जानना ।

२) अपरपरिगृहिता यानि विधवा या कुमारिका हो वो किसी की ग्रहण की हुई नहीं है इसलीये उसे अपरपरिगृहिता कहा जाता है । उनके लियें ऐसा विचार करे कि उनका कोई स्वामी नहीं है एवं ये किसी की स्त्री नहीं है, उसके साथ गमन, विलास करे तो **अपरपरिगृहितागमन अतिचार** जानना ।

३) **अनंग -** यानि का उसे जागृत करने के लिये अत्यंत आसक्त होकर स्वदेह अथवा परदेह से काम की कुचेष्टा की हो, अन्य भी चुंबन,अलिंगन, हाव-भाव, कटाक्ष आदि तथा हास्य ठठ्ठा, मजाक इत्यदि परस्त्री के साथ करे वो सब इस अतिचार में जानना ।

४ अपने बाल-बच्चे टालकर भलमनसाही करने के लिये परायी संतान से स्नेह कर उसके विवाह के लिये जोडी आदि बनायी हो और अपने संतान के विवाह का अभिग्रह कर उसकी संख्या रखना वो व्रती श्रावक के युक्त है परंतु पराया विवाह जोडे तो उसे **परविवाहकरण नामक अतिचार** लगता है ।

५) **कामभोग तीव्र अभिलाष अतिचार :-** शब्द आदि के विषय में, भोग आदि के विषय में रस आदि के विषय में, कामभोग के विषय में, रात-दिन तीव्रतापूर्वक मन में अत्यंत अभिलाष धरा हो तथा परायी स्त्री को देखकर बहुत चाहना की हो तथा परायी स्त्री बिना क्षणमात्र भी रह नहीं सके, घूमते फिरते जीव उसी में पडा हो, वो पांचवा अतिचार जानना ।

चौथे शीलव्रत को स्वीकारने वाले श्रावक-श्राविका को प्रतिज्ञा लेने की है कि **'' मैं मेरी पत्नी / मेरे पति के सिवाय अन्य किसी के साथ मैथुन सेवन नहीं करुंगा / करुंगी ।''**

इस प्रतिज्ञा के साथ विशेष में नीचे के नियमों का पालन करने से शीलव्रत की ज्यादा शुद्धि होती है । हमारे जीवन को निर्मल बनाने यथाशक्ति नियमों का पालन करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

१) मैं परस्त्रीगमन का त्याग करता हूँ ।

२) मैं वेश्यागमन का त्याग करता हूँ ।

३) मैं महिने में पांच, दस या बारह तिथी को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुंगा ।

४) मैं दिन के समय में ब्रह्मचर्य का पालन करुंगा ।

५) मैं तीर्थस्थानो में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुंगा ।

६) मैं पर्युषण पर्व एवं आयंबिल की ओळी में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुंगा ।

७) मैं जीवन में दूसरी बार विवाह नहीं करुंगा ।

८) दूसरो की वासना भडके ऐसे वस्त्र नहीं पहनुंगा ।

९) कामोत्तेजक दवाओ का उपयोग नहीं करुंगा ।

१०) मैं ब्लू फिल्म नहीं देखुंगा, दूसरो को नहीं दिखाऊंगा ।

११) मैं ब्लू बुक्स, सेक्सी नॉवेल नहीं पढूंगा, दूसरो को नहीं पढाऊंगा ।

१२) ब्रह्मचर्य व्रत के सुंदर पालन हेतु प्रतिदिन **ॐ नमो घोर बंभयारीण झ्रों झ्रों स्वाहा** । की एक माला गिनुंगा ।

१३) शीलव्रत पालन के लिये **श्रीनेमिनाथ भगवान** की आराधना करुंगा ।

परिग्रह परिमाण व्रत

किसी को शनि का ग्रह पीडा देता है.... तो

किसी को मंगल ग्रह परेशान करता है....

किसी का राहू का ग्रह सर्वनाश कर देता है .... तो

किसी को शुक्र का ग्रह मालामाल कर देता है.....

परंतु शास्त्रकार महर्षि कहते है,जीवमात्र को चार गति और चौर्यासी लाख जीवायोनि में भटकाने की.... दुःख एवं दरिद्रपना ललाट पर लिखवाने की....कदम-कदम पर अपयश देने की जितनी ताकत इन नव ग्रहो में है, उतनी ही नहीं उससे अनेक गुना ताकत एक ही 'ग्रह' में है और वो 'ग्रह' है **परिग्रह** ।

व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः, शोकस्य हेतुः कले : ।

केलीवश्म परिग्रहः परिहृते - र्योम्यो विविक्तात्मनाम् ।।

प्रशम-शांतगुण का एकमात्र दुश्मन, अधैर्य का खास मित्र, मोहराजा का विश्रांतिस्थल, पापराशि की जन्मभूमि, आपत्तिओ का मुख्य स्थान, असद्ध्यान का क्रीडावन, व्यग्रता का भंडार, मद का सचिव, प्रधान, शोक का मुख्य हेतु, वैसेही कलीका एक कलिष्टावासरुप परिग्रह का विवेकी पुरुषो ने परिहार करना ।

हे समझदार आत्मन् ।

तेरी शांति, प्रसन्नता को सुलगाकर तुझे निरंतर अशांति एवं संताप दिया है.... तेरे जीवन में आसक्ति एवं ममता को मजबूत कर दुर्गति में धकेला है.... पाप के भंडार जिससे उभर कर आये है..... जिसने तुझे अहंकारी बनाया है ऐसे इस परिग्रह को तू अच्छी तरह से व सच्चे तरीके से पहचाल ले..... इसे पहचानने में जिसने थाप खाई है, उसे इस परिग्रह को पहचानने का दूसरा अवसर जल्दी नहीं मिलता है, तुझे भाग्योदय से अवसर मिला है, तब तू किसलिये प्रमाद कर रहा है ?

परिग्रह.... संचित की हुई सारी वस्तुये यही के यहीं रह जाती है । तेरे साथ कुछ भी आता नहीं है.... तेरे हाथ में कुछ भी रहता नहीं है.... परंतु इस परिग्रह को प्राप्त करने व सम्हालने में तूने किये पाप एवं दावपेंच तेरा सत्यानाश करके तुझे दुर्गति में भेज देते है । समझ लेते है परिग्रह परिमाणव्रत को एवं यशाशक्ति जीवन में आचरण में लाकर दुर्गति से बच जाये... सद्गति को सरल बनाते है ।

अब परिग्रह का परिमाण करना यह पाँचवां अणुव्रत है, यह परिग्रह परिमाणव्रत नौ प्रकारसे है । प्रथम खित्त यानि क्षेत्र परिग्रह परिमाणव्रत, **क्षेत्र** वो खुली भूमि, उगाने की भूमि, बगीचा बनाने की जगह विशेष रुप से जानना । दुसरा **घरपरिग्रह** वो एक भूमि (मंजिल से लेकर सात मंजिल की हवेली) तथा हार वखार विशेष एवं वाडी बाग-बंगला विशेष सब घरपरिग्रह में जानना तथा **तीसरा कुविय यानि कुव्य परिग्रह** वो स्वर्ण और चांदी को छोडकर अन्य सारी धातुएं जानना जैसे कि तांबा, पीतल, कांसा, सीसा, लोहा, कलई खंग भरत इत्यादि धातु के बर्तन, थाली, कटोरी, कलश तथा खाट, पाटले, वस्त्र वगैरह घरसामान जानना तथा **चौथा धन परिग्रह** यह चार प्रकार का है उसमें एक गणिम यानि सुपारी, नारियल आदि जो गिनकर बेचे जाते है, वो जानना । दूसरा धरिम जो गुड, घी, किराणे की वस्तुये आदि जो तोल कर बेची जाती है वो जानना । तीसरा परिच्छेद जो सोना, रुपा, जवाहरात, वस्त्र, नाणे आदि परिक्षा करके बेचे जाते है वो जानना । चौथा मविय धन जो दूध वगैरह माप कर बेचे जाते है वो जानना । इस तरह से धनपरिग्रह चार प्रकार का जानना, तथा **पाँचवा धन्न** यानि **धान्य परिग्रह** यह चौबीस प्रकार का धान्य जानना । **छट्ठा हिरण परिग्रह** यह रुपा कच्चा यानि सिक्के बिना का रौप्य जानना यह रुप्यपरिग्रह तथा **सातंवा सुवर्ण परिग्रह** यह सिक्के बिना का स्वर्ण जानना । **आठंवा दुप्पयपरिग्रह** यह मूल्य देकर खरीदे हुए दास, दासी, द्विपद, मनुष्य जानना एवं **नौवां चउप्पय परिग्रह** यह गाय,भैंस, हाथी, घोडे, बैल, बकरी वगैरह चौपद जीव जानना । इस तरह से नौ संख्या से यानि प्रमाण किया हुआ नौ प्रकार से परिग्रह रुप व्रत यह अपनी इच्छानुसार परिमाण करके लिया है , इसमें अप्रशस्त भाव होने पर जो अतिचार लगे हो उन्हें शुद्ध करने का है ।

इस व्रत में १) क्षेत्र, घर, दुकान आदि किये हुए प्रमाण से ज्यादा रखे हो, २) बने हुए गहने या बिना बना हुआ सोना, रुपा, आभूषण, सिक्के वगैरह धारे हुए प्रमाण से ज्यादा रखे हो, ३) चारो प्रकार का धन तथा गेहूं, मूंग, उडद वगैरह चौबीस प्रकार का धान्य निश्चित किये हुए प्रमाण से ज्यादा रखा हो । ४) दो पैर वाले

दास, दासी आदि तथा चार पैर वाले गाय, भैंस आदि धारे हुए प्रमाण से ज्यादा रखे हो ५) तांबा, कांसा, लोखंड, वगैरह हल्की जाति की धातु धारे हुए से ज्यादा रखी हो, यह पांच अतिचार दोष पांचवे व्रत में लगाना नहीं ।

परिग्रह व्रत को समझने के बाद इस व्रत को स्वीकार करने का है । इस व्रत को स्वीकारने वाले पुण्यशाली श्रावक, श्राविकाओ को इस अनुसार प्रतिज्ञा लेने की होती है - **''मैं मेरे नाम पर पैसा, प्रोपर्टी, गहने, जमीन वगैरह के लिये..... किलो से ज्यादा सोने के भाव अनुसार रकम रखूंगा नहीं, यदि पैसा ज्यादा हुआ तो तुरंत धर्म के मार्ग में उपयोग कर लुंगा ।''**

इस व्रत की सविषेश शुद्धि के लिये एवं अपनी आत्मा को ज्यादा पापो से बचाने के लिये नीचे बताये गये नियम सहायक बनते है ।

१) मैं..... से ज्यादा वाहन रखूंगा नहीं, बसाऊंगा नहीं ।

२) मैं..... से ज्यादा गाय, भैंस, बैल वगैरह रखूंगा नहीं ।

३) सात व्यसन में जिनका समावेश होता हो ऐसे किसी होटल, कंपनी, मिल इत्यादी के शेयर नहीं लुंगा ।

४) माता-पिता अथवा अन्य किसी की जायदाद प्राप्त करने कोर्ट में जाऊंगा नहीं ।

५) जायदाद के लिये भाई-बहन,पुत्र,पत्नी वगैरह के सामने कोर्ट में केस लडूंगा नहीं, जो सहज रुप से मिलेगा उसी का स्वीकार करुंगा ।

६) मेरा परिग्रह ज्यादा होता होगा तो वो परिवार के अन्य सदस्यों के नाम पर नहीं करुंगा ।